शिवभक्त महाकाल एवं उनके उपदेश

प्राचीनकाल में वाराणसी नगरी में माण्टि नाम के एक महायशस्वी ब्राह्मण रहते थे। वे शिवजी के बड़े भक्त थे और सदा शिवमन्त्र का जप किया करते थे। प्रारब्धवश उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये उन्होंने पुत्र की कामना से दीर्घकालतक शिवमन्त्र-जप का अनुष्ठान किया। एक दिन भगवान् शङ्कर उनकी तपश्चर्या से प्रसन्न हो उनके सामने प्रकट हुए और बोले-'वत्स माण्टि! मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा और तुम्हें मेरे ही समान प्रभावशाली एवं शक्तिसम्पन्न मेधावी पुत्ररत्न प्राप्त होगा, जो तुम्हारे समग्र वंश का उद्धार करेगा।' यों कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये और माण्टि भगवान् शङ्कर के योगिदुर्लभ, नयनाभिराम रूप का दर्शन करके और उनसे मनचाहा वरदान पाकर अत्यन्त हर्षित हुए।

माण्टि की पत्नी का नाम चटिका था। वह महान् पतिव्रता एवं तपस्या की मानो मूर्ति ही थी। समय पाकर तपोमूर्ति ब्राह्मणपत्नी गर्भवती हुई। क्रमश: गर्भ बढ़ने लगा और उसके साथ-साथ उस सती का तेज और भी विकसित हो उठा; किंतु पूरे चार वर्ष व्यतीत हो गये, सन्तान गर्भ से बाहर नहीं आयी। इस घटना को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। माण्टि ने सोचा कि अवश्य ही यह कोई अलौकिक बालक है, जो गर्भ से बाहर नहीं आना चाहता। अत: वे अपनी पत्नी के पास जाकर गर्भस्थ शिशु को संबोधन करके कहने लगे-'वत्स! सामान्य पुत्र भी अपने माता-पिता के आनन्द को बढ़ानेवाले होते हैं; फिर तुम तो अत्यन्त पवित्र चरित्रवाली माता के उदर में आये हो और भगवान् शङ्कर के अनुग्रह से हमारी दीर्घकाल की तपस्या के फलरूप में प्राप्त हुए हो। ऐसी दशा में क्या तुम्हारे लिये यह उचित है कि तुम माता को इस प्रकार कष्ट दे रहे हो और हमारी भी चिन्ता के कारण बन रहे हो? हे पुत्र! यह मनुष्य जन्म ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधक है। शास्त्रों में इसे देवताओं के लिये भी दुर्लभ बताया गया है। फिर क्यों नहीं तुम शीघ्र ही बाहर आकर हम सब लोगों को आनन्दित करते?'

गर्भ बोला-'हे तात! जो कुछ आपने कहा, वह सब मुझे ज्ञात है। मैं यह भी जानता हूँ कि इस भूमण्डल में मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है; परंतु मैं कालमार्ग से अत्यन्त भयभीत हूँ। वेदों में काल और अर्चि नाम के दो मार्गों का वर्णन आता है। कालमार्ग से जीव कर्मों के चक्कर में पड़ जाता है और अर्चिमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। कालमार्ग से चलनेवाले जीव चाहे पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में ही क्यों न चले जायँ, वहाँ भी उन्हें सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष निरन्तर इस चेष्टा में लगे रहते हैं कि उन्हें इस घोररूप गम्भीर कालमार्ग में न भटकना पड़े। अत: यदि आप कोई ऐसा उपाय कर सकें, जिससे मेरा मन नाना प्रकार के सांसारिक दोषों से लिप्त न हो, तो मैं इस

मनुष्यलोक में जन्म ले सकता हूँ।'

गर्भस्थ शिशु की इस शर्त को सुनकर माण्टि और भी भयभीत हो गये। उन्होंने सोचा कि भगवान् शङ्कर को छोड़कर कौन इस शर्त को पूरा कर सकता है। जिन्होंने कृपा करके मेरे मनोरथ को पूर्ण किया है, वे ही इस शर्त को भी पूरा करेंगे। यों सोचकर वे मन-ही-मन भगवान् शङ्कर की शरण में गये और उनसे प्रार्थना की। माण्टि की प्रार्थना भगवान् आशुतोष ने सुन ली। उन्होंने अपने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यादि को मूर्तरूप में बुलाकर कहा कि 'देखो, माण्टिपुत्र को विपरीत ज्ञान हो गया है, अतः तुम लोग जाकर उसे समझाओ और ठीक रास्ते पर लाओ।' भगवान् महेश्वर की आज्ञा पा, वे विभूतियाँ साकार विग्रह धारण कर गर्भस्थ शिशु के निकट गयीं और उसे सम्बोधित कर कहने लगीं-'महामति माण्टिपुत्र! तुम किसी प्रकार का भय न करो। भगवान् शङ्कर की कृपा से हम धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य कभी तुम्हारे मन का परित्याग नहीं करेंगे। अतः तुम निर्भय होकर गर्भ से बाहर निकल आओ।' यों कहकर वे चारों दिव्य मूर्तियाँ चुप हो गयीं। उनके चुप हो जाने पर अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य भी विकराल मूर्तियाँ धारण कर भगवान् शङ्कर की आज्ञा से वहाँ उपस्थित हुए तथा माण्टिपुत्र से कहने लगे कि 'तुम यदि हमारे भय से बाहर न आते हो, तो इस भय का त्याग कर दो। भगवान् शङ्कर की आज्ञा से हम तुम्हारे भीतर कदापि प्रवेश नहीं कर सकेंगे।'

इस प्रकार धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य तथा उनके विरोधी अधर्म, अवैराग्य और अनैश्वर्य की आश्वासनवाणी को सुनते ही बालक माण्टिपुत्र अविलम्ब गर्भ से बाहर निकल आया और काँपते-काँपते रुदन करने लगा। उस समय भगवान् शङ्कर की विभूतियों ने माण्टि से कहा-'देखो, माण्टि! तुम्हारा पुत्र अब भी कालमार्ग के भय से काँप और रो रहा है। अतः तुम्हारा यह पुत्र कालभीति नाम से विख्यात होगा।' यों कहकर विभूतिगण अपने स्वामी शङ्करजी के पास चले गये।

बालक कालभीति शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा की भाँति क्रमशः बढ़ने लगा। पिता ने क्रमशः उसके उपनयनादि संस्कार किये और उसे पाशुपतव्रत में परिनिष्ठित कर शिव-पञ्चाक्षरमन्त्र (नमः शिवाय) की दीक्षा दी। कालभीति अपने पिता के समान ही पञ्चाक्षरमन्त्र के परायण हो गये। उन्होंने तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से विविध रुद्रक्षेत्रों में भ्रमण किया और घूमते-घूमते स्तम्भतीर्थ नामक क्षेत्र में पहुँचे, जहाँ का प्रभाव उन्होंने लोगों से पहले ही सुन रक्खा था। वहाँ वे एक बिल्व के वृक्ष के नीचे घोर तपस्या करते हुए एकाग्र मन से रुद्रमन्त्र का जप करने लगे। उन्होंने यह नियम ले लिया कि 'सौ वर्षतक भोजन को तो कौन कहे, जल की एक बूँद भी ग्रहण नहीं करूँगा।' ज्यों ही सौ वर्ष समाप्त होने को आये कि एक अज्ञात पुरुष जल से भरा हुआ एक घड़ा लेकर कालभीति के पास आया और प्रणाम करके उस तपस्वी ब्राह्मण से कहने लगा-'हे महामति कालभीति! आज तुम्हारा अनुष्ठान भगवान् शङ्कर की कृपा से पूर्ण हो गया है। तुम्हें भूख-प्यास सहते पूरे सौ वर्ष हो गये हैं। मैं बड़े प्रेम से

अत्यन्त पवित्र होकर यह जल तुम्हारे लिये ले आया हूँ। तुम कृपा करके इसे स्वीकार करो और मेरे श्रम को सफल करो।'

कालभीति को वास्तव में प्यास बहुत सता रही थी। अञ्जलिभर पानी के लिये उनके प्राण छटपटा रहे थे। परंतु सहसा एक अपरिचित व्यक्ति के द्वारा लाया हुआ जल ग्रहण करना उन्होंने उचित नहीं समझा। वे शङ्कापूर्ण नेत्रों से उस आगन्तुक पुरुष की ओर देखते हुए बोले-'आप कौन हैं? आपकी जाति क्या है और आपका आचार कैसा है, कृपाकर बताइये। आपकी जाति और आचार को जान लेने के बाद ही मैं आपके लाये हुए जल को ग्रहण कर सकता हूँ।' इस पर वह अपरिचित व्यक्ति बोला-'तपोधन! मेरे माता-पिता इस लोक में हैं या नहीं, इसका भी मुझे पता नहीं है। उनके विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं सदा इसी ढंग से रहता हूँ। आचार अथवा धर्म से, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। अत: आचार की बात मैं क्या कह सकता हूँ? सच पूछिये तो मैं किसी आचार-विचार का पालन ही नहीं करता।'

कालभीति बोले-'यदि ऐसी बात है, तब तो मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। मैं आपके दिये हुए जल को ग्रहण नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव ने जो श्रुतिसम्मत उपदेश मुझे दिया है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। जिसके कुल का हाल अथवा रक्तशुद्धि का पता न हो, साधु व्यक्ति उसके दिये हुए अन्न-जल को ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार जो व्यक्ति भगवान् के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं रखता और न उनकी भक्ति करता है, उसके हाथ का अन्न-जल भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता। भगवान् को अर्पण किये बिना जो व्यक्ति भोजन करता है, उसे बड़ा पाप लगता है। गङ्गाजल से भरे हुए घड़े में एक बूँद मदिरा के मिल जाने से जैसे वह अपवित्र हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् की भक्ति न करनेवाले का अन्न चाहे कितनी ही पवित्रता से बनाया गया हो, अपवित्र ही होता है। परंतु यदि कोई मनुष्य शिवभक्त भी हो, परंतु उसकी जाति और आचार भ्रष्ट हों तो उसका अन्न भी नहीं खाया जाता। अन्न-जल के सम्बंध में शास्त्रों में दोनों बातों का विचार रक्खा गया है। अन्न या जल-जो कुछ भी ग्रहण किया जाय, वह भगवान् को अर्पित हो और जिसके द्वारा वह अन्न अथवा जल लाया गया है, वह जाति तथा आचार की दृष्टि से पवित्र हो।'

कालभीति के इन वचनों को सुन कर वह मनुष्य हँसने लगा और बोला-'अरे तपस्वी! तुम तप एवं विद्या से सम्पन्न होने पर भी मुझे नितान्त मूर्ख प्रतीत होते हो। तुम्हारी इस बात को सुनकर मुझे हँसी आती है। अरे नादान! क्या तुम नहीं जानते कि भगवान् शिव सभी भूतों के अंदर समान-रूप से निवास करते हैं? ऐसी दशा में किसी को पवित्र और किसी को अपवित्र कहना कदापि उचित नहीं है। अपवित्र कहकर किसी की निन्दा करना प्रकारान्तर से उसके अंदर रहनेवाले भगवान् शंङ्कर की ही निन्दा करना है। जो मनुष्य अपने अथवा दूसरे के अंदर भगवान् की सत्ता के सम्बन्ध में सन्देह

करता है, मृत्यु उस भेदज्ञानी मनुष्य के लिये विशेष रूप से भयदायक होती है। फिर जरा विचारो तो सही कि जल में अपवित्रता आ ही कैसे सकती है। जिस पात्र में इसे मैं ले आया हूँ, वह मिट्टी का बना हुआ है–मिट्टी भी ऐसी वैसी नहीं, किंतु अवें की आग में भलीभाँति तपायी हुई; और फिर वह जल के द्वारा शुद्ध हो चुकी है। मृत्तिका, जल और अग्नि–इनमें से कौन सी वस्तु अपवित्र है? यदि कहो कि हमारे संसर्ग से यह जल अपवित्र हो गया है, तो यह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि तुम और हम दोनों ही इस मिट्टी से ही तो बने हैं और मिट्टी पर ही सदा रहते हैं। मेरे संसर्ग से यदि जल अशुचि हो सकता है तो जिस जमीन पर मैं खड़ा हूँ, वह जमीन भी मेरे संसर्ग से अपवित्र हो जानी चाहिये। तब तो तुम्हें भूमि को छोड़कर आकाश में विचरण करना होगा। इन सब बातों पर विचार करने से तुम्हारी उक्ति मुझे नितान्त मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती है।'

कालभीति ने कहा–'अवश्य ही भगवान् शङ्कर का सभी भूतों में निवास है। परंतु इस बात को लेकर जो सब भूतों की व्यवहार में समानता करता है, वह अन्नादि का परित्याग करके मृत्तिका अथवा भस्म से उदरपूर्ति क्यों नहीं करता? क्योंकि उसके मतानुसार अन्न में जो भगवान् हैं, वे ही तो मृत्तिका और भस्म में भी हैं। परंतु उसकी यह मान्यता ठीक नहीं। परमार्थ–दृष्टि से सब कुछ शिवरूप होने पर भी व्यवहार में भेद आवश्यक है। इसीलिये शास्त्र में नाना प्रकार की शुद्धि के विधान पाये जाते हैं और उनके फल भी अलग–अलग निर्दिष्ट हुए हैं। शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करना कदापि उचित नहीं है। जो शास्त्र भगवान् शिव की सत्ता सर्वत्र बतलाते हैं, वे ही व्यवहार में भेद का भी विधान करते हैं। शास्त्र की एक बात को मानी जाय और दूसरी न मानी जाय, यह कहाँ तक उचित है। दोनों ही बातें अपनी–अपनी दृष्टि से ठीक हैं और दोनों की परस्पर सङ्गति भी है।

'श्रुति कहती है कि बाहर–भीतर की पवित्रता रक्खो। इसी बात को इतिहास–पुराण इन शब्दों में कहते हैं–यदि परलोक में सुखी रहना चाहते हो और कष्टों से बचना चाहते हो, तो शौचाचार का पालन करो। पृथ्वी पर रहनेवाले व्यक्तियों के लिये शौचाचार का पालन आवश्यक कर्तव्य है। ऐसी दशा में यदि आप श्रुतियों की अवहेलना करके 'सब कुछ शिवमय है' यह कहकर व्यवहार के भेद को मिटाना चाहते हैं तो फिर बताइये, क्या श्रुति–पुराणादि शास्त्र व्यर्थ नहीं हो जायँगे? आप जो यह कहते हैं कि भगवान् शिव सभी भूतों में स्थित हैं, यह ठीक है। भगवान् शिव सर्वत्र हैं, यह बात अक्षरशः सत्य है। फिर भी व्यक्तिभेद से उनकी सत्ता में भी भेद कहा जा सकता है। इसके लिये मैं आपको एक दृष्टान्त देता हूँ। यद्यपि सभी सोने के गहने सुवर्ण नाम की एक ही धातु से बने हुए होते हैं, तब भी सबका सोना एक ही दाम का अथवा एक ही रंग का नहीं होता। उनमें से एक का सोना एकदम शुद्ध–टकसाली होता है, दूसरे का उसकी अपेक्षा कुछ नीचे दर्जे का होता है। और तीसरे का और भी निकृष्ट होता है। परंतु यह तो मानना ही पड़ेगा कि सभी सुवर्ण के गहनों

में सोना मौजूद है। साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि सभी गहनों का सोना एक सा नहीं है। इसी प्रकार भगवान् शिव भी सब भूतों में हैं अवश्य; परंतु एक के अंदर उनका प्रकाश अत्यन्त शुद्ध है, दूसरे के अंदर वह उतना शुद्ध नहीं है और तीसरे के अंदर वह और भी मलिन है। इस प्रकार समस्त पदार्थों में व्यवहार की दृष्टि से समता नहीं की जा सकती। जिस प्रकार निकृष्ट श्रेणी का सोना दाहादि के द्वारा शोधित होकर क्रमशः उत्कर्ष को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मलिन अन्तःकरण तथा मलिन देहवाले जीव शौचादि के द्वारा शुद्ध होकर ही शुद्ध शिवत्व के अधिकारी होते हैं। सामान्य शौचादि के द्वारा सहसा शुद्ध शिवत्व का लाभ सम्भव नहीं है, इसीलिये शास्त्रों में देह-शोधन की आवश्यकता बतायी गयी है। देह शोधित होने पर ही देही स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार जो बुद्धिमान् पुरुष देहशोधन की इच्छा रखते हैं, वे चाहे जिस व्यक्ति से अन्न-जल नहीं ग्रहण करते हैं। इसके विपरीत जो लोग शौचाचार का विचार न करके चाहे जिसका अन्न-जल ग्रहण कर लेते हैं, वे पवित्र आचरणवाले होने पर भी कुछ ही समय में तमोगुण से आच्छन्न होकर जड़ीभूत हो जाते हैं। इसलिये मैं आपका यह जल ग्रहण नहीं कर सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।'

तपस्वी के इस शास्त्रानुमोदित एवं युक्तियुक्त भाषण को सुनकर वह अज्ञात मनुष्य चुप हो गया। उसने पैर के अँगूठे से बात-की-बात में एक बड़ा सा गड्ढा खोद डाला और उसमें उस मटके के जल को उँड़ेल दिया। वह बड़ा गड्ढा उस थोड़े से जल से लबालब भर गया, फिर भी थोड़ा जल उस मटके में बच गया। उस बचे हुए जल से उसने निकटवर्ती एक सरोवर को भर दिया। इस अद्भुत व्यापार को देखकर कालभीति तनिक भी विस्मित नहीं हुए। उन्होंने सोचा, भूतादि की उपासना करनेवाले बहुधा इस प्रकार की आश्चर्यजनक घटनाएँ कर दिखाया करते हैं; परंतु इस प्रकार के आश्चर्यों से श्रुतिमार्ग में कोई विरोध नहीं आ सकता।

भक्त कालभीति के दृढ़ निश्चय को देखकर वह अपरिचित व्यक्ति सहसा जोर से हँसता हुआ अन्तर्धान हो गया। कालभीति भी यह देखकर आश्चर्य में डूब गये और उस व्यक्ति के सम्बन्ध में नाना प्रकार के ऊहापोह करने लगे। इस प्रकार जब वे विचार में डूबे हुए थे कि उनकी दृष्टि सहसा उस बिल्ववृक्ष के मूल की ओर गयी जहाँ वे तपस्या करते थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक विशाल शिवलिङ्ग अकस्मात् प्रादुर्भूत हो गया है। उसके तेज से दसों दिशाएँ उद्भासित हो उठी हैं। आकाश में गन्धर्वगण सुमधुर गान कर रहे हैं और अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। देवराज इन्द्र उसके ऊपर पारिजात के पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं तथा अन्यान्य देवता एवं मुनिगण भी जय-जयकार करते हुए नाना प्रकार से भगवान् शङ्कर की स्तुति कर रहे हैं।

इस प्रकार वहाँ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। कालभीति ने भी अत्यन्त आनन्दित होकर उस

स्वयम्भू लिङ्ग को प्रणाम किया और स्तुति करते हुए कहा–'जो पापराशि के काल हैं, संसाररूपी पङ्क के काल हैं, तथा काल के भी काल हैं, उन कलाधर, कालकण्ठ महाकाल की मैं शरण आया हूँ। आपको मैं बार–बार नमस्कार करता हूँ। हे शिव! आप से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है और आप स्वयं अनादि हैं। जहाँ–जहाँ जिस–जिस योनि में मैं जन्म लेता हूँ, वहाँ–वहाँ आप मेरे ऊपर करुणा की निरन्तर वर्षा करते हैं। हे ईश्वर! जो संसार से विरक्त होकर आपके षडक्षरमन्त्र का जप करते हैं, आप उन समस्त मुनिगणों पर बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। हे प्रभो! मैं उसी '**ॐ नमः शिवाय**' इस षडक्षरमन्त्र का निरन्तर जप करता हूँ।'

भक्तश्रेष्ठ कालभीति की स्तुति को सुनकर भगवान् शङ्कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उसी लिङ्ग में से अपने स्वरूप में प्रकट हो गये और दिव्य प्रकाश से त्रिलोकी को प्रकाशित करते हुए उस ब्राह्मण से बोले–'द्विजश्रेष्ठ! तुमने इस महीतीर्थ में कठोर तपस्या के द्वारा जो मेरी आराधना की है, इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब मेरी कृपा से काल भी तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेगा। मैंने ही मनुष्य–शरीर धारण करके तुम्हारे विश्वास की परीक्षा ली थी और मुझे हर्ष है कि उस परीक्षा में तुम पूर्णतया सफल हुए। तुम्हारे जैसे दृढ़विश्वासी पुरुष जिस धर्म का आचरण करते हैं, वही धर्म वास्तव में श्रेष्ठ है। मैं तुम्हारे लिये जो जल ले आया था, वह समस्त तीर्थों का जल है और अत्यन्त पवित्र है। मैंने उसके द्वारा ही उस गड्ढे एवं सरोवर को भरा है। अब तुम मुझसे अपना अभिलषित वर माँगो। तुम्हारी आराधना से मैं इतना अधिक प्रसन्न हुआ हूँ कि तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय न होगा।'

कालभीति ने कहा–'प्रभो! आपने मेरे प्रति जो प्रसन्नता प्रकट की है, उससे मैं वास्तव में धन्य हो गया हूँ। वास्तव में धर्म वही है, जिससे भगवान् की प्रसन्नता सम्पादित होती है। जिस धर्म से आप भगवान् की सन्तुष्टि नहीं होती, वह धर्म धर्म ही नहीं है। अब आप यदि मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि आप अब से सदा इस लिङ्ग में विराजमान रहें, जिससे कि इस लिङ्ग के प्रति जो कुछ भी पूजा–अर्चा की जाय, वह अक्षय फल देनेवाली हो जाय।'

भगवान् शङ्कर ने कालभीति की इस निष्काम प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा–'वत्स! तुमने मेरी आराधना के द्वारा कालमार्ग पर विजय प्राप्त की है, इसलिये तुम भी महाकाल नाम से विख्यात होकर नंदी की भाँति मेरे अनुचररूप में चिरकालतक मेरे लोक में सुखपूर्वक निवास करोगे। कुछ ही दिनों बाद इस स्थान पर करन्धम नाम के राजर्षि तुमसे मिलने आयेंगे, उन्हें धर्म का उपदेश देकर तुम मेरे लोक में चले आना।' भगवान् शिव यह कहकर उस लिङ्ग के अंदर लीन हो गये। इसके बाद महाकाल भी आनन्दपूर्वक उस स्थान में रहकर तपस्या करने लगे।

कुछ दिनों बाद राजा करन्धम महाकालतीर्थ का माहात्म्य और महाकाल के चरित्र की कथा

सुनकर धर्म के सम्बन्ध में विशेष तत्त्व जानने की इच्छा से वहाँ आये। महाकाल लिङ्ग का दर्शन करके करन्धम राजा के आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने उस समय अपने जीवन को सफल समझा। इसके बाद महामहोपचार से उन्होंने महाकाल लिङ्ग की पूजा की और फिर भक्तवर महाकाल के पास पहुँचकर प्रणाम किया। राजा को आते देखकर महाकाल को भगवान् शङ्कर का वचन स्मरण हो आया और उन्होंने हास्ययुक्त वदन से राजा के सामने आकर उनका स्वागत किया और अर्घ्य-पाद्यादि उपचारों के द्वारा उनका सत्कार किया। राजा करन्धम ने शान्तमूर्ति भक्तवर महाकाल से कुशल-प्रश्न के अनन्तर अनेकों धर्मविषयक प्रश्न किये और महाकाल ने उन सबका शास्त्रानुमोदित उत्तर देकर राजा का समाधान किया।

करन्धम के धर्मविषयक प्रश्न

यहाँ पाठकों की जानकारी के लिये करन्धम के कुछ प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दिया जा रहा है। करन्धम ने पूछा-'श्राद्ध का अन्न तो पितरों को दिया जाता है, परन्तु वे अपने कर्म के अधीन होते हैं। यदि वे स्वर्ग या नरक में हों, तो श्राद्ध का उपभोग कैसे कर सकते हैं? और वैसी दशा में वे वरदान देने में भी कैसे समर्थ हो सकते हैं?

महाकाल ने कहा-'यह सत्य है कि पितर अपने-अपने कर्मों के अधीन होते हैं, परन्तु देवता, असुर और यक्ष आदि के तीन अर्मूत तथा चारों वर्णों के चार मूर्त-ये सात प्रकार के पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं, ये कर्मों के अधीन नहीं, वे सबको सब कुछ देने में समर्थ हैं। ये सातों पितर भी सब वरदान आदि देते हैं। उनके अधीन अत्यन्त प्रबल इकतीस गण होते हैं। इस लोक में किया हुआ श्राद्ध उन्हीं मानव पितरों को तृप्त करता है। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्ता के पूर्वजों को जहाँ कहीं भी उनकी स्थिति हो जाकर तृप्त करते हैं। इस प्रकार अपने पितरों के पास श्राद्ध में दी हुई वस्तु पहुँचती है और वे श्राद्ध ग्रहण करनेवाले नित्य पितर ही श्राद्धकर्ताओं को श्रेष्ठ वरदान देते हैं।'

राजा करन्धम ने आगे पूछा-'कुश, तिल, अक्षत और जल-इन सबको हाथ में लेकर क्यों दान दिया जाता है? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ।'

महाकाल ने कहा-'राजन्! प्राचीन काल में मनुष्यों ने बहुत से दान किये, और उन सबको असुरों ने बलपूर्वक भीतर प्रवेश करके ग्रहण कर लिया था। तब देवताओं और पितरों ने ब्रह्माजी से कहा-'स्वामिन्! हमारे देखते-देखते दैत्यलोग सब दान ग्रहण कर लेते हैं। अतः आप उनसे हमारी रक्षा करें, नहीं तो हम नष्ट हो जायँगे।' तब ब्रह्माजी ने सोच-विचार कर दान की रक्षा के लिये एक उपाय निकाला। पितरों को तिल के साथ दान दिया जाय, देवताओं को अक्षत के साथ दिया जाय तथा जल एवं कुश का संबंध सर्वत्र रहे। ऐसा करने पर दैत्य उस दान को नहीं ग्रहण कर सकते। इन सबके बिना जो दान दिया जाता है, उसपर दैत्यलोग बलपूर्वक अधिकार कर लेते हैं, और देवता तथा पितर

दु:खपूर्वक उच्छ्वास लेते हुए लौट जाते हैं। वैसे दान से दाता को कोई फल नहीं मिलता। इसलिये सभी युगों में इसी प्रकार (तिल, अक्षत, कुश और जल के साथ) दान दिया जाता है।'

करन्धम पुनः पूछते हैं- 'ब्रह्मन् मैं चारों युगों की व्यवस्था को यथार्थ रूप में जानना चाहता हूँ।'

उत्तर में महाकाल ने विस्तारपूर्वक चारों युगों की विशेषता का वर्णन किया। संक्षेप में कृतयुग में सब मनुष्य एकमत होकर सदा भगवान् सदाशिव का ध्यान करते हैं। त्रेता में सब ओर यज्ञ की चर्चा होने लगती है। अज्ञानी मनुष्य भगवान् सदाशिव के ध्यानमय मोक्षमार्ग को छोड़कर रागवश वेदों की यज्ञ सम्बन्धिनी पुष्पित (प्रशंसापूर्ण) वाणी का आश्रय ले यज्ञ द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति के साधन में संलग्न हो गये। तदनन्तर द्वापर आने पर सबमें लोभ और अधैर्य बढ़ जाता है। भगवान् शंकर का आश्रय छोड़ देने से सबमें धर्मसंकरता आ जाती है तथा वर्ण और आश्रम-धर्म की मर्यादा टूटने लगती है। तत्पश्चात् द्वापर की सन्ध्या में और कलियुग के प्रारंभ में जब शैवयोग नष्ट होने लगता है, तब योग से आनन्दित होनेवाले मुनि प्रकट होते हैं। श्वेतवाराहकल्प के कलियुग में सर्वप्रथम भगवान् रुद्र ही योगेश्वररूप में प्रकट होते हैं। तदनन्तर कंकण, लौगाक्षि, महामुनि जैगीषव्य, ऋषभ, लकुलीश इत्यादि भावी योगेश्वर कलियुग में संक्षेप से शैव-धर्म का उपदेश करेंगे।

कलियुग में राजा लोग निडर होकर पाप करेंगे, वे रक्षक नहीं वरं प्रजा की संपत्ति हड़प लेने वाले होते हैं। ब्राह्मण शूद्र की वृत्ति से जीविका चलानेवाले होंगे। मनुष्य वेदवाक्यों तथा वेदार्थों की निन्दा करेंगे। शूद्रों ने जिसे स्वयं रच लिया हो, वही शास्त्र एवं प्रमाण माना जायगा। यद्यपि कलियुग समस्त दोषों का भण्डार है, तथापि उसमें एक महान् गुण भी है। कलिकाल में थोड़े ही समय साधन करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

कलेर्दोषनिधेश्चैव शृणु चैकं महागुणम्।
यदल्पेन तु कालेन सिद्धिं गच्छन्ति मानवाः।। (स्क. पु. माहे. कुमा. ख. 35/115)

त्रेता में एक वर्षतक तथा द्वापर में एक मासतक क्लेशपूर्वक धर्मानुष्ठान करनेवाले बुद्धिमान् पुरुष को जो फल प्राप्त होता है वह कलियुग में एक दिन के अनुष्ठान से मिल जाता है। कलियुग में भगवान् विष्णु और शिव की नियमपूर्वक उपासना करनेवाले जितने मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होते हैं, उतने अन्य युगों में तीन युगोंतक उपासना करने से प्राप्त होते हैं।

त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः।
यथा क्लेशं चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्यते कलौ।।
युगत्रयेण तावन्तः सिद्धिं गच्छन्ति पार्थिव।
यावन्तः सिद्धिमायान्ति कलौ हरिहरव्रताः।। (स्क. पु. माहे. कुमा. ख. 35/117-118)

करन्धम आगे पूछते हैं– 'ब्रह्मन्! कोई भगवान् शिव की, कोई विष्णु की तथा कोई ब्रह्माजी की शरण लेने से सर्वोत्कृष्ट मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं; किन्तु आप किससे मुक्ति मानते हैं।'

महाकाल उत्तर देते हैं कि इन तीनों देवताओं की महिमा अपार है। इस विषय में बड़े–बड़े योगीश्वरों का भी मन मोहित हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है। नैमिषारण्यवासी तपस्वी मुनियों ने ऐसा निश्चय किया है कि जो इन तीनों देवों में से किसी एक को उत्तम, मध्यम या अधम बतलाते हैं, वे झूठ बोलनेवाले और पापात्मा हैं। उन्हें निश्चय ही नरक में जाना पड़ता है। यह सत्य ही है और मेरा भी यही स्पष्ट मत है। सहस्रों जप करनेवाले, सहस्रों वैष्णव तथा सहस्रों शैव ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अनुगमन (आराधन) करके अपने को संसारबन्धन से मुक्त कर चुके हैं। इसलिये जिसका हार्दिक अनुराग जिस देवता के प्रति स्पष्टरूप से प्रकट हो, वह उसी का भजन करे। इससे वह पापरहित हो सकता है, यही मेरा सर्वोत्तम मत है।

तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन् देवे भवेत्स्फुटम्।
स तं भजेद्विपापः स्यान्ममेदं मतमुत्तमम्॥ (स्क. पु. माहे. कुमा. ख. 36/14)

तदनन्तर करन्धम ने महाकाल से पापों के स्वरूप के बारे में प्रश्न किया। उत्तर में महाकाल ने स्थूल, सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म के भेद से तीन प्रकार के अधर्मों का वर्णन किया। स्थूल पापों का अनुष्ठान, मन, वाणी और कर्मों द्वारा होता है। इन मानसिक आदि पापों के भी चार–चार भेद हैं। इन सभी पापों का वर्णन करने के बाद महाकाल ने बताया कि निरन्तर फल देनेवाले छः महापातक हैं– (1) जो मन्दिर आदि में भगवान् शंकर को देखकर न तो नमस्कार करते हैं और (2) न उनकी स्तुति ही करते हैं, (3) अपितु भगवान् के सामने निःशंक हो मनमानी चेष्टा करते हुए खड़े होते और क्रीड़ा–विलास आदि करते हैं, (4) भगवान् शिव तथा गुरुजन के समीप पूजा, नमस्कार आदि आवश्यक शिष्टाचारों का पालन नहीं करते, (5) शिवशास्त्रों में बताये हुए सदाचार को नहीं मानते, (6) और शिवभक्तों से द्वेष रखते हैं। वे आगे कहते हैं कि उपर्युक्त सभी प्रकार के पाप बन जाने पर मनुष्य प्राणत्याग के पश्चात् नरक का कष्ट भोगने के लिये पूर्व शरीर की भाँति एक यातना देह प्राप्त करता है। अतः नरक में डालनेवाले तीनों ही प्रकार के पापकर्मों को त्याग देना चाहिये और श्रद्धापूर्वक भगवान् सदाशिव की शरण लेनी चाहिये। संसर्गवश, कौतुहलवश अथवा लोभ से भी भगवान् शंकर के प्रति किये हुए नमस्कार, स्तुति, पूजा तथा नाम–संकीर्तन कभी विफल नहीं होते (स्क. पु. माहे. कुमा. ख. 36/79)

शिवपूजा की विधि तथा सदाचार

अन्त में करन्धम ने पूछा–ब्रह्मन्! आप भगवान् शंकर की पूजा का विधान संक्षेप से बताने की कृपा करें, जिसका पालन करने से मनुष्य शिव के पूजन का पूरा फल प्राप्त कर सके।

महाकाल ने उत्तर दिया-राजन्! सदा प्रात:काल, मध्याह्नकाल और सायंकाल में भगवान् शंकर का भजन करे। उनके दर्शन और स्पर्श से मनुष्य निश्चय ही कृतार्थ हो जाता है। पहले स्नान करे अथवा यदि रोग आदि संकट से ग्रस्त हो, तो केवल भस्मस्नान करे अथवा कण्ठतक जल से स्नान करे। यह भी संभव न हो, तो केवल मन्त्रस्नान ही कर ले। स्नान के पश्चात् ऊनी वस्त्र अथवा श्वेत वस्त्र धारण करे या नवीन वस्त्र धारण करे। मैला अथवा सिला हुआ वस्त्र न धारण करे। धौतवस्त्र के अतिरिक्त उत्तरीय वस्त्र भी धारण करना चाहिये, अन्यथा उसके बिना पूजन निष्फल होता है। जो पुरुष ललाट में, हृदय में और दोनों कंधों पर भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करके प्रसन्नतापूर्वक महादेवजी की पूजा करता है, वह अल्पकाल में भगवान् शिव का दर्शन पाता है।

उपासक अपने सब दोषों को मन से निकालकर भगवान् शिव के मन्दिर में प्रवेश करे। प्रवेश करके पहले महादेवजी को प्रणाम करे। तदनन्तर मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश करे, फिर हाथ-पैर धोकर मन-ही-मन भगवान् का चिन्तन करते हुए उनके श्रीविग्रह पर चढ़े हुए निर्माल्य को हटावे। जो भगवान् शिव के मन्दिर में भक्तिपूर्वक मार्जन करने(झाड़ू देने) का कार्य करता है, भगवान् शंकर भी उसके अन्त:करण का मार्जन(शोधन) कर देते हैं। तत्पश्चात् स्वच्छ जल से गड़ुवों को भर ले। सभी गड़ुवे बराबर और सुन्दर होने चाहिये। उनमें कोई छेद न रहे, वे फूटे न हों, सबकी बनावट अच्छी हो, सभी वस्त्र से छाने हुए जल से परिपूर्ण हों, उन्हें चन्दन और धूप से सुवासित किया गया हो; 'ॐ नम: शिवाय' इस षडक्षर मन्त्र का जप करते हुए उन गड़ुवों को धोया गया, भरा गया और लाया गया हो, ऐसे एक सौ आठ गड़ुवों की व्यवस्था कर ले। इतना न हो तो अट्ठाईस अथवा अठारह गड़ुवों का प्रबन्ध करे। कम-से-कम चार गड़ुवे अवश्य रक्खे। दूध, दही, घी, शहद तथा ईख का रस इन सब सामग्रियों को एकत्र करके भगवान् शिव के वामभाग में रख दे। तदनन्तर बाहर निकलकर प्रतिहारों(द्वारपालों) की पूजा करे, उन सबके वाचक मन्त्र क्रमश: इस प्रकार हैं-'ॐ गं गणपतये नम:, ॐ क्षें क्षेत्रपालाय नम:, ॐ गुं गुरुभ्यो नम:'-इन तीन मन्त्रों से आकाश में पूजन सामग्री समर्पित करे। तत्पश्चात् चारों दिशाओं में क्रमश: कुलदेवता, नन्दी, महाकाल और धाता-विधाता की पूजा करे, इनकी पूजा के मन्त्र इस प्रकार हैं-'ॐ कुं कुलदेवतायै नम:, ॐ नं नन्दिने नम:, ॐ मं महाकालाय नम: और ॐ धां धात्रे विधात्रे नम:'।

इस प्रकार बाहर पूजा करने के पश्चात् भीतर प्रवेश करके शिवलिंग से कुछ दक्षिण भाग में पवित्रतापूर्वक उत्तराभिमुख होकर बैठे। शरीर को समभाव से रखते हुए आसन पर आसीन हो क्षणभर भगवान् का ध्यान करे। कमल के आकार का सूर्यमण्डल है, उसके मध्यभाग में चन्द्रमण्डल की स्थिति है, उसके भी मध्यभाग में अग्निमण्डल है जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य से घिरा हुआ है। इस प्रकार अग्निमण्डल का चिन्तन करके उसके मध्यभाग में विश्वरूप भगवान् शिव का भावना द्वारा साक्षात्कार

करे। भगवान् शिव अपनी वामा और ज्येष्ठा आदि शक्तियों से संयुक्त हैं। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं, प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र शोभा पा रहे हैं, उनके मस्तक चन्द्रमा से विभूषित हैं, भगवान् के वामांग में भगवती उमा विराजमान हैं तथा सिद्धगण बारंबार उनकी स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान् शिव का ध्यान करे।

ध्यान के पश्चात् शंकरजी की सेवा में पाद्य एवं अर्घ्य निवेदन करे। जल, अक्षत, कुशा, चन्दन, पुष्प, सरसों, दूध, दही, और मधु - ये अर्घ्य के नौ अंग बताये गये है; इन सबको एकत्र करके अर्घ्य देना चाहिये। इसके बाद श्रद्धा से आर्द्रचित्त हो शिवलिंग को स्नान कराना आरम्भ करे। पहले गड़ुवा हाथ में लेकर स्नान करावे, आधे गड़ुवे से शिवलिंग को पहले नहलावे, फिर हाथ से रगड़कर मैल साफ करे, पुनः गड़ुवे के समूचे जल से स्नान करावे, स्नान के पश्चात् पूजन करे और धूप दे। इसके बाद भक्तिपूर्वक भगवान् शिव को प्रणाम करके मूलमन्त्र से उन्हें स्नान करावे। '**ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः**' यह द्वादशाक्षर मूलमन्त्र है। इसी मूलमन्त्र से जल एवं धूप से किये हुए पूजन के अतिरिक्त जल, दूध, दही, मधु, घृत और ईख के रस द्वारा पृथक-पृथक स्नान करावे। फिर सब गड़ुवों के जल से स्नान करावे। तदनन्तर गन्धद्रव्यों का लेपन करके श्रीविग्रह का रूखापन दूर करे। रूखापन दूर करके पुनः नहलावे और चन्दन का लेप करे। तत्पश्चात् भाँति-भाँति के फूलों से पूजन करे। उसकी विधि इस प्रकार है। आधार पीठ के अग्निकोणवाले पाये में '**ॐ धर्माय नमः**' इस मन्त्र से धर्म की पूजा करे, नैर्ऋत्य कोणवाले पाये में '**ॐ ज्ञानाय नमः**' इस मन्त्र के द्वारा ज्ञान का पूजन करे, इसी प्रकार वायव्य कोण में '**ॐ वैराग्याय नमः**' ईशान कोणवाले पाये में '**ॐ ऐश्वर्याय नमः**', पूर्व दिशावाले पाये में '**ॐ अधर्माय नमः**', दक्षिण में '**ॐ अज्ञानाय नमः**', पश्चिम में '**ॐ अवैराग्याय नमः**', उत्तर में '**ॐ अनैश्वर्याय नमः**'- इन मन्त्रों द्वारा क्रमशः वैराग्य आदि की पूजा करे। फिर कमल की कर्णिका में ही अनन्त आदि की इन मन्त्रों से पूजा करे- '**ॐ अनन्ताय नमः**', '**ॐ पद्माय नमः**', '**ॐ अर्कमण्डलाय नमः**', '**ॐ सोममण्डलाय नमः**', '**ॐ वह्निमण्डलाय नमः**', '**ॐ वामज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्यो नमः**', '**ॐ परमप्रकृत्यै देव्यै नमः।**' इसके बाद ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पाँच मुखोंवाले, रुद्र-साध्य-वसु-आदित्य तथा विश्वेदेवादि देवस्वरूप, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुजरूप स्थावर-जंगममूर्ति परमेश्वर एवं विश्वमूर्ति शिव का नमस्कारपूर्वक पूजन करे। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ ईशान तत्पुरुषाघोरवामदेवसद्योजातपञ्चवक्त्राय
रुद्रसाध्यवस्वादित्यविश्वेदेवादिदेवरूपायाण्डजस्वेदजोद्भिज्ज-
जरायुजरूपस्थावरजङ्गममूर्तये परमेश्वराय ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः।

तत्पश्चात् '**त्रिशूलधनुःखड्गकपालकुठारेभ्यो नमः**'-इस मन्त्र से त्रिशूल आदि

की पूजा करे। तदनन्तर जलाधार के मुख भाग में **'चण्डीश्वराय नमः'** इस मन्त्र के द्वारा चण्डीश्वर की पूजा करे।

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके भगवान् शिव को अर्घ्य निवेदन करे। 'हे महादेवजी जल, अक्षत, फूल और इन उत्तम फलों से युक्त यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये, पूजा की पूर्ति के लिये मैं इसे समर्पित करता हूँ।' इस प्रकार अर्घ्य देने के बाद यदि अपने में शक्ति हो तो धन के द्वारा भी भगवान् का पूजन करे। इसके बाद क्रमशः धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे, घण्टा बजावे और आरती करे। देवाधिदेव शिवजी के ऊपर शंख आदि वाद्यों की ध्वनि के साथ आरती घुमानी चाहिये। जो भगवान् शिव की आरती का दर्शन करता है, वह समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है। फिर जो स्वयं ही भगवान् की आरती उतारेगा, उसके लिये तो कहना ही क्या है। जो भगवान् शिव के समीप नृत्य, संगीत तथा वाद्य-इन तीनों का आयोजन करता है, उसपर भगवान् शिव बहुत संतुष्ट होते हैं; क्योंकि गीत और वाद्य का फल अनन्त होता है।

तदनन्तर अनेक प्रकार के स्तोत्रों द्वारा महादेवजी की स्तुति करके दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरकर प्रणाम करे और देवेश्वर शिव से अपने अपराधों के लिये क्षमा प्रार्थना करते हुए कहे-'भगवन्! मुझसे जो सुकृत अथवा दुष्कृत हुआ है उसके लिये आप क्षमा करें।'

महाकाल कहते हैं कि जो इस प्रकार भगवान् शंकर का विशेषतः इस महाकाल लिंग में पूजन करता है, वह अपने पिता, पितामह और प्रपितामह का सब पापों से उद्धार करके चिरकालतक रुद्रलोक में निवास करता है। जो इस प्रकार भगवान् शंकर की पूजा करता है, उसने मानो समस्त संसार को तृप्त कर दिया। किन्तु यह सब पूजन उसी का सफल होता है, जो कभी सदाचार का उल्लंघन नहीं करता है। आचार से धर्म सफल होता है, आचार से ही मनुष्य स्वर्ग का सुख भोगता है, आचार से आयु प्राप्त होती है तथा आचार अशुभ लक्षणों को नष्ट कर देता है। जो इस जगत् में सदाचार का उल्लंघन करके स्वेच्छाचारपूर्ण बर्ताव करता है, उस मनुष्य के यज्ञ, दान और तप इस लोक में कल्याणकारक नहीं होते।

आचारात् फलते धर्मो ह्याचारात् स्वर्गमश्नुते।
आचाराल्लभते चायुराचारो हन्त्यलक्षणम्।।
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते।। (स्क. पु. माहे. कुमा. ख. 36/123-125)

इसके उपरान्त महाकाल ने करन्धम को आचार का संक्षिप्त परिचय देते हुए अन्य बातों के अलावा यह कहा है कि दो अग्नि, दो ब्राह्मण, पति और पत्नी, सूर्य एवं चन्द्रमा की प्रतिमा तथा भगवान् शंकर और नन्दिकेश्वर वृषभ इनके बीच में होकर न जाय। विद्वान् पुरुष एक वस्त्र धारण

करके न तो भोजन करे, न अग्नि में आहुति दे, न ब्राह्मणों की पूजा करे और न देवताओं की अर्चना ही करे। कूटना, पीसना, झाड़ू देना, पानी छानना, राँधना, भोजन करना, सोना, उठना, जाना, छींकना, स्पर्श करना, सुनना, बोलने की इच्छा करना, मैथुन करना तथा शौचकर्म इन बीस कार्यों के होते या करते समय जो सदा भगवान् शंकर का नाम स्मरण करता है, उसी को शिवभक्त जानना चाहिये; शेष दूसरे लोग नाममात्र के शिवभक्त कहे गये हैं। शिवजी का प्रत्येक कार्य में स्मरण करनेवाला शिवभक्त निश्चय ही शिवस्वरूप होकर अन्त में शिव को ही प्राप्त होता है। सैकड़ों कार्य छोड़कर भी धर्म की कथा–वार्ता सुने। प्रतिदिन धर्म–चर्चा श्रवण करनेवाला मनुष्य अपने अन्तःकरण को उसी प्रकार शुद्ध कर लेता है, जैसे नित्यप्रति झाड़ू देने अथवा सफाई करने से घर और दर्पण स्वच्छ होते हैं।

इस प्रकार महाकाल विविध धर्मों का उपदेश कर ही रहे थे कि सहसा आकाश में बड़ा भारी शब्द होने लगा। महाकाल ने उस ओर ताका तो वे क्या देखते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, उनके अनुचर तथा भगवती के सहित स्वयं भगवान् शङ्कर आ रहे हैं। उनके साथ इन्द्रादि देवता, वसिष्ठादि, मुनीश्वर, तथा तुम्बुरु प्रभृति गन्धर्व हैं। महामति महाकाल ने भक्तिनिर्भर चित्त से उठकर सबकी अभ्यर्थना की और अनेक प्रकार से पूजा की। ब्रह्मादि देवताओं ने महाकाल को उत्तम रत्नसिंहासन पर बिठाकर उस महीसागर–सङ्गमक्षेत्र में उनका अभिषेक किया। देवी भगवती ने महाकाल को वात्सल्यभाव से आलिङ्गन कर गोद में बिठाया और पुत्रवत् प्यार करती हुई बोलीं– 'शिवव्रतपरायण वत्स! यह ब्रह्माण्ड जबतक रहेगा, तबतक तुम शिवभक्ति के प्रभाव से शिवलोक में निवास करोगे।'

उस समय ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति देवगण, साधु–साधु कहकर महाकाल की प्रशंसा और स्तुति करने लगे, चारणलोग उनका गुणगान करने लगे और गन्धर्वगण मनोहर गान के द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगे। करोड़ों शिवजी के गण उनकी स्तुति करते हुए उन्हें घेरकर चारों और खड़े हो गये। इस प्रकार अपूर्व समारोह के साथ भक्तश्रेष्ठ महाकाल अपने आराध्यदेव के साथ सशरीर शिवलोक को चले गये।

(उपर्युक्त लेख कल्याण के भक्तचरितांक तथा संक्षिप्त स्कंदपुराणांक (माहे. कुमा. अ. 34–36) जो गीताप्रेस, गोरखपुर से क्रमशः संवत् 2049 एवं 2050 में प्रकाशित हुए हैं, पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁